ISSN : 2277-7865
Price : ₹ 50

तित्थयर

वर्ष : ३८ अंक : १० जनवरी २०१५

॥ जैन भवन ॥

KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM

KUSUM®

KUSUM QUALITY PRODUCT

श्रीश्री नेमिनाथाय नमः

"ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी"।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late Sikhar Chand Churoria

MANUFACTURED BY

K. K. FOOD PRODUCTS

A quality product of
Nakeen, Chanachur, Bhujia, Gathia etc.

Partners
Mr. Anil Kumar
Mr. Sunil Kumar Churoria

P.O.- Azimganj, Dist. Murshidabad
Pin- 742122, West Bengal
Mobile: 09734067986/9434060429
Phone No: 03483-253232, Fax No.: 03483-253566
E-mail ID : kusumchanachur@hotmail.com
azimganjsunil@gmail.com

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३८ अंक - १० जनवरी २०१५

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Dr. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10. Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	आयुर्वेद में जैन मुनियों का योगदान	जैन साध्वी राजरश्मिजी	३९३
२.	पर्यावरण क्षेत्र में अहिंसा की अवधारणा	श्रीमती कल्पना मुकीम	४०३
३.	यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान	डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी	४१५
४.	सोने के कंगन		४१८

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

आयुर्वेद में जैन मुनियों का योगदान

जैन साध्वी राजरश्मिजी

आयुर्वेद हमारे देश की प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। हम यहाँ आयुर्वेद की उत्पत्ति के विषय में विचार न करते हुए इस बात पर विचार करेंगे कि जैन मुनियों ने आयुर्वेद विषय पर कितना लिखा। उनका चिंतन इस दिशा में कैसा था? यदि आगम साहित्य की बात की जाए तो वहाँ आचारांग सूत्र, स्थानांग सूत्र और विपाक सूत्र आदि में आयुर्वेद के आठ प्रकार (अष्टांग आयुर्वेद), सोलह महारोगों और चिकित्सा सम्बन्धी विषयों पर अच्छा विवरण उपलब्ध होता है। आगम साहित्य में आयुर्वेद विषयक विवरण की चर्चा भी हम प्रस्तुत आलेख में नहीं कर रहे हैं। यदि अवसर मिला तो जैन आगम साहित्य और आयुर्वेदिक विवरण पर पृथक से विचार करने का प्रयास अवश्य किया जायेगा। प्रस्तुत आलेख में तो हम कुछ प्रमुख जैनाचार्यों और मुनियों के योगदान पर विचार करेंगे। अतः प्रस्तुत है निम्न विवरण–

1. **समन्त भद्र :-** आपने 'सिद्धान्त रसायन कल्प' नामक वैद्यक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें अठारह हजार श्लोक थे। वर्तमान में उक्त ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। कहीं-कहीं उसके कुछ श्लोक मिल जाते हैं। यदि संग्रह किये जाये तो दो तीन हजार श्लोक हो सकते हैं। आपने अपने इस ग्रन्थ में औषध योग में पूर्ण अहिंसा धर्म का ही समर्थन किया है। इसमें पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग एवं संकेत भी तदनुकूल दिये गये हैं। इसलिए अर्थ करते समय जैनमत की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर अर्थ करना पड़ता है। उदाहरणार्थ रत्नत्रय औषध का उल्लेख ग्रन्थ में आया है। इसका अर्थ वज्रादि रत्नत्रयों के द्वारा निर्मित औषधि ऐसा सामान्य दृष्टि से हो सकेगा। किन्तु वैसा नहीं है। जैन सिद्धान्त के सम्यग् दर्शन ज्ञान व चारित्र को रत्नत्रय के नाम से कहा है। वे जिस प्रकार मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी त्रिदोषों का नाश करते हैं, उसी प्रकार रस, गंध व पाषाण इन त्रिधातुओं का अमृतिकरण तैयार करने

वाला रसायन वात, पित्त व कफ रूपी त्रिदोषों को दूर करता है। अतः इस रसायन का नाम रत्नत्रयौषध रखा गया है।[1]

इसी प्रकार औषध निर्माण की प्रक्रिया में भी जैन मत प्रमाण के अनुसार ही संकेत संख्याओं का विधान है। जैसे रस सिंदूर को तैयार करने के लिए कहा है कि 'सूतकेसरिगंधक मृगनवासारद्रुम' यहाँ विचारणीय विषय है कि प्रमाण किस प्रकार लिया हुआ है। जैन तीर्थंकरों के भिन्न-भिन्न चिन्ह या लांछन होते हैं। उसके अनुसार जिन तीर्थंकरों के चिन्ह से प्रमाण का उल्लेख किया जाये उतनी संख्या में प्रमाण को ग्रहण करना चाहिए। उदाहरणार्थ ऊपर के वाक्य में सूत केसरिपद आया है। केसरी महावीर का चिन्ह है, केसरी शब्द से 24 संख्या ग्रहण करनी चाहिए। अर्थात् रस 24 गंधक मृग अर्थात् सोलहवें तीर्थंकर का चिन्ह होने से 16 इत्यादि प्रकार से अर्थ ग्रहण करना चाहिए। समन्तभद्र के ग्रन्थ में सर्वत्र इस प्रकार के सांकेतिक व पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन पारिभाषिक शब्दों के लिए कोषों का भी निर्माण हुआ है।[2]

समन्तभद्र ने अपने 'सिद्धान्त रसायन कल्प' ग्रन्थ में स्वयं उल्लेख किया है कि "श्रीमद भल्लातकद्रौ वसति जिन मुनिः सूतवादे रसाब्ज। ई. साथ में जब समन्तभद्राचार्य ने अपने वैद्यक ग्रन्थ की रचना परिपक्व शैली में की एवं ग्रन्थ में पूर्वाचार्यों की परम्परा को भी रसेन्द्र जैनागम सूत्रबद्ध" इत्यादि शब्दों से उल्लेख किया तो अनुमान किया जा सकता है कि समन्तभद्र के पहले भी इस विषय के ग्रंथ होंगे।[3]

1. **पुष्पायुर्वेद :-** यह ग्रन्थ समन्तभद्र कृत है। इस ग्रन्थ में आपने अठारह हजार जाति के कुसुम (पराग रहित) पुष्पों से ही रसायनौषधि के प्रयोगों को लिखा है। इस ग्रंथ में ई. सन् तीसरी सदी की कर्नाटक की लिपि उपलब्ध होती है जो बहुत मुश्किल से पढ़ने में आती है। इतिहास संशोधकों के लिए यह एक अपूर्व व उपयोगी विषय है। अठारह हजार जाति के केवल पुष्पों के प्रयोगों का ही जिसमें कथन हो, उस ग्रन्थ का कितना महत्व होगा, इस पर भी विचार करना होगा। हमारे लिए यह गौरव का विषय है कि अभी तक पुष्पायुर्वेद का निर्माण जैनाचार्यों के अतिरिक्त और किसी ने भी नहीं किया है। आयुर्वेद संसार में यह एक अद्भुत चीज है। महर्षि समन्तभद्र का पीठ गेरसप्पा में था। उस वन में

जहाँ समन्तभद्र वास करते थे अभी तक विशाल शिलामय चतुर्मुखी मंदिर, ज्वालामालिनी मंदिर व पार्श्वनाथ जिन चैत्यालय दर्शनीय वास्तु विद्यमान है। वन में यत्र-तत्र मूर्तियां बिखरी पड़ी है। दंत कथा, परम्परा से ज्ञात होता है कि जंगल में एक सिद्ध रस कूप है। कलियुग में जब धर्म संकट उपस्थित होगा, उस समय इस रस कूप का उपयोग करने का आदेश दिया गया है। इस कूप का सर्वाजन नामक अंजन नेत्रों में लगाकर देख सकते हैं। सर्वाजन को तैयार करने की विधि पुष्पायुर्वेद में बताई गई है। साथ में अंजन के लिए उपयोगी पुष्प उसी प्रदेश में मिलने का उल्लेख भी है। अतः इस प्रदेश की भूमि का नाम 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' के नाम से उल्लेख किया है।[4] श्री अभिदेव विद्यालंकार के अनुसार समन्तभद्र ने अष्टांग नामक ग्रंथ में विस्तार से कहा था, उसी का अनुसरण करके संक्षेप में उग्रदित्या ने कल्याणकारक को बनाया। सम्भवतः समन्तभद्र आचार्य का ग्रंथ अष्टांग संग्रह के ढंग का रहा होगा। आज यह साहित्य उपलब्ध नहीं है। केवल गिने चुने ग्रंथ ही प्रकाशित हुए हैं।[5]

ये धारवाड़ जिला होन्नावार तालुका के गेरसप्पा के पास हाडहिल में रहते थे। कन्नड़ में हाड़ शब्द का अर्थ संगीत है। हिल शब्द का अर्थ ग्राम है, जिसे आजकल संगीतपुर कहते हैं। हाडहिल में इन्द्रगिरी और चन्द्रगिरी दो पर्वत है। वहाँ कुछ मुनि तपश्चर्या करते थे। उनकी शिष्य परम्परा में वैद्यक ग्रंथों का निर्माण हुआ है।[6]

2. **पूज्यपाद देवनंदी :-** डॉ. हरिशचन्द्र जैन के मतानुसार 700-1200 ई. से पूर्व का कोई जैनाचार्य आयुर्वेद के क्षेत्र में दृष्टगोचर नहीं होता है। आयुर्वेद के जैन मनीषी सर्वप्रथम पूज्यपाद या देवनंदी को माना जा सकता है।[7] ये पांचवीं सदी में हुए हैं। इनका क्षेत्र कर्नाटक रहा है। इन्होंने गगन गामिनी विद्या में कौशल प्राप्त किया था। ये पारद (Mercury) के विभिन्न प्रयोगों को करते थे। निम्न धातुओं से स्वर्ण बनाने की क्रिया जानते थे। उन्होंने शालक्य तंत्र पर ग्रंथ लिखा है। इनके वैद्यक ग्रंथ प्रायः अनुपलब्ध है। वि. सं. 1416 में कन्नड़ कवि मंगराज हुए जिन्होंने खगेन्द्रमणिदर्पण नामक आयुर्वेद ग्रंथ पूज्य पाद के वैद्यक से संग्रह कर लिखा। बौद्ध नागाजुर्न से भिन्न एक नागार्जुन जो पूज्यपाद के बहनोई थे, जिन्हें पूज्यपाद

ने वैद्यक विद्या सिखाई थी। रस गुटिका जो खेचरी गुटिका थी का निर्माण सिखाया था। पूज्यपाद रसायन शास्त्र के विद्वान थे। वे अपने पैरों में गगनगामिनी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र में भी यात्रा करते थे। दिगम्बर जैन साहित्य के अनुसार वे आयुर्वेद साहित्य के प्रथम जैन मनीषी थे। वे चरक, पतंजलि की कोटि के विद्वान थे। अनेक रसायन, योगशास्त्र और चिकित्सा की विधियों के वे ज्ञाता थे। साथ ही शल्य एवं शालाक्य विषय के विद्वान आचार्य थे।[8] पूज्यपाद द्वारा रचित एक ग्रंथ वैद्यसार भी है। इसके अतिरिक्त निदान मुक्तावली, वैद्यशास्त्र, मदनकाम रत्न ग्रंथ भी मिलते हैं। ये तीनों ग्रन्थ उनके अप्रकाशित। पूज्यपाद के ग्रन्थों पर विशेष शोध की आवश्यकता है।

3. **गुम्मट देव मुनि** :- गुम्मट देव मुनि ने मेरूतंत्र नामक वैद्यक ग्रन्थ की रचना की। प्रत्येक परिच्छेद के अंत में इन्होंने पूज्यपाद स्वामी का आदर पूर्वक स्मरण किया है।[9]

4. **सिद्ध नागार्जुन** :- ये पूज्यपाद के भाणजे थे। इन्होंने नागार्जुन कल्प, नागार्जुन कक्षपुर आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इन्होंने 'वज्रखेचर घुटिका' नामक स्वर्ण बनाने की रत्नगुटिका भी बनाई थी। इसके निर्माण के लिए राजा से आर्थिक सहायता भी ली थी। जब राजा ने पूछा कि यदि आपके कथनानुसार गुण न आवे तो आपके प्रण का क्या होगा? नागार्जुन ने उत्तर दिया कि मेरी आँखें निकाल सकते हैं। राजा की दी गई सहायता से एक वर्ष में औषध को तैयार करके एवं उसकी तीन मणियों को बनाकर उनपर अपना नाम खोदा। जब वे नदी में ले जाकर उन मणियों को धो रहे थे तब हाथ से फिसलकर नदी में गिर पड़ी। राजा ने इनकी दोनों आंखों को निकलवा लिया। वे अंधे हो गये और देशांतर चले गये। एक वेश्या स्त्री को वह मछली मिली। चीरने पर मणियां मिल गई। वेश्या ने उन्हें झूले पर रखा। झूले पर लटकी हुई लोहे की सांकल सोने की हो गई। तदनंतर वह वेश्या प्रतिदिन लोहे से सोना बनाया करती थी। उसने पर्याप्त मात्रा में सोना बनाया और विपुल मात्रा में धन खर्चकर नागार्जुन सत्र नाम से अन्न क्षेत्र बनाया। यत्र-तत्र, घूमते-फिरते नागार्जुन वहीं आये। वास्तविकता ज्ञात हुई। उसकी आंखों की ज्योति भी इनसे आ गई।[10]

श्री अभिदेव विद्यालंकार का मत है कि सिद्ध नागार्जुन जिनका सम्बन्ध रस क्षेत्र से है, बौद्ध थे। सम्भवतः उन्हीं के अनुसार जैनों ने इनको अपने यहाँ ले लिया है। वज्र खेचर गुटिका खेचर गुटिका के नाम से कहीं जाती है। यह गुटिका प्रसिद्ध बौद्ध नागार्जुन के नाम से रस ग्रंथों में प्रसिद्ध है।[11]

5. **उग्रादित्याचार्य :-** ये नंद मुनि के शिष्य थे। उग्रादित्याचार्य ने इन्हीं से ज्ञान प्राप्त करके इन्हीं की आज्ञा से कल्याणकारक नाम वैद्यक ग्रंथ की रचना की है।[12]

कल्याणकारक ग्रंथ की रचना औषध में मांस की निरूपयोगिता सिद्ध करने के लिए की थी। नृपतुंग वल्लभ महाराज के दरबार में जहाँ मांस सेवन को समर्थन देने वाले अनेक विद्वान थे, उनके सामने मांस की निष्फलता को सिद्ध कर दिया है। नृपतुंग अमोघ वर्ष का नाम ग्रंथ में है और उन्हें ही वल्लभ और महाराजाधिराज की उपाधि थी, नृपतुंग भी उनकी उपाधि थी। इतिहास वेत्ताओं ने अमोघवर्ष के राज्यारोहण का समय शक सं. 736 (वि. सं. 871 ई. सन् 815) का लिखा है। गुणभद्र सूरी कृत उत्तरपुराण से ज्ञात होता है कि अमोघवर्ष (प्रथम) प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन का शिष्य था।[13]

रायबहादुर नरसिंहाचार्य ने लिखा है–एक मनोरंजक विषयों से परिपूर्ण आयुर्वेद ग्रन्थ कल्याणकारक श्री उग्रादित्य के द्वारा रचित मिला है। जो कि जैनाचार्य के और राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम व चालुक्य राजा कलि विष्णुवर्धन पंचम के समकालीन थे। ग्रंथ का प्रारम्भ आयुर्वेद तत्त्व के प्रतिपादन के साथ हुआ है, जिसके दो विभाग किये गये है। एक रोगशोधन व दूसरा चिकित्सा। अन्तिम एक गद्यात्मक प्रकरण में उस विस्तृत भाषण को लिखा है, जिसमें मांस की निष्फलता को सिद्ध किया है, जिसे अनेक विद्वान व वैद्यों की उपस्थिति में नृपतुंग की सभा में उग्रादित्याचार्य ने दिया था।[14] कल्याणकारक के सम्पादकीय में उग्रादित्याचार्य एवं ग्रंथ विषयक विशेष जानकारी दी गई है।

डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री ने लिखा है– 'श्री नन्दलालजी ने अपने The geographical Dictionery of Ancient and Medieval India नामक

कोष में महाभारत को त्रिकलिंग माना है और नागपुर से 24 मील उत्तर में विद्यमान रामटेक को रामगिरी माना है और यहीं उग्रादित्याचार्य द्वारा कल्याणकारक की रचना हुई।[15] आगे डॉ. शास्त्री ने इनके गुरु और समय की चर्चा की है। उनके अनुसार उनके गुरु का नाम श्री नन्दि था और समय वि. सं. 749 बताया है। नन्दि को उज्जैन का पट्टाधीश बताया है।[16] डॉ. शास्त्री ने कल्याणकारक ग्रन्थ का परिचय देते हुए बताया है कि ग्रंथ में पच्चीस परिच्छेद के अलावा परिशिष्ट रूप में दो अध्याय है कि ग्रंथकर्ता ने प्रत्येक परिच्छेद के प्रारंभ में जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार किया है। कल्याणकारक में वातप्रकृति के मनुष्य के लक्षण, पित्त प्रकृति के मनुष्य के लक्षण, कफ प्रकृति के मनुष्य के लक्षण भी बताये है। रोगोत्पत्ति के कारण वैद्य के गुण, रोगी के गुण, औषधि के गुण और परिचारक के गुण भी बताये गये हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ काफी उपयोगी है।

6. **महाकवि धनंजय** :- इनका समय वि. सं. 960 है इन्होंने धनंजय निघंटु लिखा है जो वैद्यक के साथ कोश ग्रंथ है। ये पूज्यपाद के मित्र थे, समकालीन थे। इन्होंने विषापहर स्त्रोत की रचना की है जो प्रार्थना द्वारा रोग दूर करने के लिए लिखा है।[17] डॉ. के.बी. पाठक ने इन्हें सन् 1123-1140 के मध्य का माना है किन्तु डॉ. ए.बी. किथ ने इनके मत को नहीं माना है।[18]

इनके पिता का वासुदेव और माता का नाम श्रीदेवी तथा गुरु का नाम दशरथ बताया गया है। कवि गृहस्थ धर्म और गृहस्थोचित् षट्कर्मों का पालन करता था।[19]

7. **सोमदेव सूरी** :- आचार्य सोमदेव सूरि ने आयुर्वेद विषयक किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना नहीं की किन्तु उनके ग्रन्थ यशस्तिलक से उनके आयुर्वेद विषयक ज्ञान की जानकारी मिलती है। इन्हें वनस्पति शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। सोमदेवसूरि ने यशस्तिलक के अन्त में स्वयं लिखा है कि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी शक संवत् 1881 (सन् 959 ई.) को जिस समय से श्रीकृष्ण राजदेव पाड्य, सिंहल, चोर, चोल आदि राजाओं को जीतकर मेलपाटी सेना शिविर में थे, उस समय उनके चरण कमलोंपजीवी चालुक्य वंशी अरीकेसरी के प्रथम पुत्र सामंत वद्दिग

(वद्यग), की राजधानी गंगधारा में यह काव्य रचा गया।[20] यशस्तिलक ग्रन्थ में आयुर्वेद विषयक विवरण पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

इसमें भोज का समय, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, अभोज्य पदार्थ, भोज्य पदार्थ, भोजन करने की विधि, रात्रि, शयन या निद्रा, निहार या मल-मूत्र विसर्जन अभयंग तथा उद्धर्तन, स्नान, व्यायाम, रोग और उनकी परिचर्या अजीर्ण कारण और प्रकार वमन, ज्वर, भगन्दर पूर्व रूप, लक्षण, गुल्म, सितश्वित सफेद कुष्ट, औषधियाँ आदि का विस्तार से विवरण पाया जाता है। इतना ही नहीं यशस्तिलक में यह भी स्पष्ट किया है कि किस ऋतु में किस प्रकार का भोजन करना चाहिए। जैसे शरद ऋतु में घृत, मूंग, शालि, लस्सी, दूध के बने पदार्थ, परवल, दाख, अंगूर, आवला, मधुर रस वाले पदार्थ, कंद, कोपल आदि का सेवन करना चाहिए। डॉ. गोकुल चन्द जैन ने अपने शोध प्रबन्ध यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन में परिच्छेद छण में स्वस्थ रोग उनकी परिचर्या इस विषयक विस्तार से चर्चा की है। इसमें सोमदेव के आयुर्वेद विषयक ज्ञान की जानकारी मिलती है।

8. **आशाधर** :- आशाधर जैन सम्प्रदाय के बहुश्रुत, प्रतिभा सम्पन्न और महान ग्रन्थ कर्ता थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। जिसमें वैद्यक ग्रन्थ भी है। ये बघेरवाल जाति के थे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण और माता का नाम रत्नि, पत्नी का सरस्वती और पुत्र का छाहड था। ये मूलतः सपाद लक्ष, (नागौर, जोधपुर के आसपास का प्रदेश) राज्य के निवासी थे। इस प्रदेश में मंडलकार दुर्ग (वर्तमान मांडलगढ़) में रहते थे। कारणवश उधर से नलछा जिला धार (मध्यप्रदेश) में आ गये और यहीं रहे। इन्होंने वाग्भट के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टांग हृदय' पर अष्टांग हृदयोद्योतिनि नामक टीका लिखी। यह ग्रन्थ अप्राप्य है, किन्तु विद्वानों ने इनके महत्व को स्वीकार किया है।[21]

9. **भिषद्व शिरोमणि हर्षकीर्ति सूरि** :- इनके समय के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। ये नागपुरिया तपागच्छ के चन्दकीर्ति के शिष्य थे और मानकीर्ति इनके गुरु थे। इन्होंने योग चिन्तामणि और व्याधिनिग्रह नामक दो ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों ग्रन्थ उपलब्ध है और प्रकाशित भी है। ये दोनों ग्रन्थ चिकित्सा की दृष्टि

से उपयोगी है। इनके साहित्य में चरक, सुश्रुल एवं बागभट्ट का सार है। कुछ नवीन योगो का मिश्रण है जो उनके स्वयं के चिकित्साज्ञान की रचना है। ग्रन्थ जैनाचार्य की रक्षा हेतु लिखा गया है।[22]

सोलहवीं अथवा सत्रहवीं शदी में जैन हर्षकीर्ति सूरि का लिखा योग चिन्तामणि ग्रन्थ है। इनकी एक हस्तलिखित प्रति 1666 की प्राप्त है। (जोली मेडिसीन पृष्ठ 3) इसमें फिरंग रोग का वर्णन है इस दृष्टि से यह भाव प्रकाश के पीछे बना प्रतीत होता है।[23]

"योग चिन्तामणि नामक ग्रन्थ वैद्यवराग्रण्य श्री हर्षकीर्ति जी ने निर्मित किया है। इसमें प्रत्येक रोगों का निर्माण पूर्ण रूप से अच्छे प्रकार के कथन कर इनके ऊपर कषाय, रसायन, माला, पाक, चूर्ण, तेल, गुटिका, अवलेह इत्यादि सर्व रोगों की औषधि विचारपूर्वक वर्णन की है। और समस्त औषधि भी सुगमता से कही है।[24]"

इस ग्रन्थ में सात अधिकार हैं। यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है किन्तु आधुनिक युग में इस ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है। हम इस ग्रंथ के एक दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

कॉफी, मिर्च, खपरिया, शुद्ध अफीम इनको समान भाग में ले साठी, चावल के धोइबे के पानी से घोट, गोली कर, चावल के धोवन से देनी सो सबरी भांति के दस्त के निकार को मेटे।।3।।

"जीरो भांग बेल, गिरी, अफीम ये समान भाग ले, दही के जल से गोली कर देवें तो सवेरे दस्त विकार को दूर करें"।।4।।

"केत, बड़ के कोमल पत्ता, सोंठ, जीरो मिश्री के समान भाग लें चूर्ण कर देय तो महातिसार को हरे"।।5।।

10. **श्री हस्ति रूचि :-** श्री हस्ति रुचि तपागच्छ के प्राज्ञोदय रुचि के शिष्य हितरुचि के शिष्य थे। इन्होंने अपने वैद्यक ग्रंथ 'वैद्य वल्लभ' की ई. सन् 1670 में रचना की।[26]

आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा के अनुसार हस्ति रुचि कवि द्वारा विरचित ग्रंथ में आठ विभाग है। अनेक योगों में एतद् हस्तकवेमंतम कारिलंकविना, कविता कथितं आदि का निर्देश होने से योग लेखक के

अनुभूत है। ऐसा प्रतीत होता है। स्त्रियों के लिए गर्भपात तथा गर्भ निवारण के अनेक योग है। स्त्रियों का धातुरोग (2/17) सम्भवतः श्वेतप्रदर है। सोरा (4/16) सूर्यक्षार के नाम से है। विजय (5/4), अहिफेन (4/20/5/4) और अकरकरा (4/23) भी है। इच्छा भेदी, सर्वकुष्ठादि अनेक रस प्रयोग भी है। अहिफेन सोमल (शंखिया) शक्ति का धतुर आदि के विष को शांत करने के उपाय कहे गये हैं। पादव्रण में एक लेप का विधान है, जिसमें मोम, राल, साबुन और मक्खन है। (8/26)। (27)।

ऊपर हमने आयुर्वेद विषयक कुछ साहित्य की चर्चा की। इसके अतिरिक्त और भी अनेक मुनियों/आचार्यों ने आयुर्वेद विषयक साहित्य का सृजन किया है। यहां हम कुछ नामों का उल्लेख करना भी उचित समझते हैं। यथा–नयन सुख, कविवर मलूकचंद, कविवर रामचन्द्र कविवर लक्ष्मीवल्लभ, कविवर मान, समरथ, मुनि मेघ, श्री यशकीर्ति विनयमेरूगणि, रामलाल महोपाध्याय, दीपकचंद वाचक, महेन्द्र जैन, जिन समुद्रसूरि, चैनसुखयति, पालाम्बर, ज्ञानसागर, जिनदास वैद्य आदि नाम प्रमुख है। इनके अतिरिक्त और भी रचनाकार हो सकते हैं, जिन्होंने आयुर्वेद पर लिखा है। अभी तक इस विषय पर विस्तृत शोध नहीं हुआ है, ऐसा हमारा मानना है। यदि प्रयास किया जावे तो एक अच्छा शोध प्रबन्ध तैयार हो सकता है और चिकित्सा के क्षेत्र में कुछ नये आयाम प्रकट हो सकते हैं। विश्वास है कि जिज्ञासु इस दशा में प्रयास करेंगे।

संदर्भ स्थल :-

1. कल्याणकारक, सम्पादकीय पृष्ठ 35, 36 उग्रदित्याचार्य
2. वही, सम्पादकीय पृष्ठ 36
3. वही, सम्पादकीय पृष्ठ 37
4. वही, सम्पादकीय पृष्ठ 38
5. आयुर्वेद का वृहद इतिहास, पृष्ठ 334
6. वही पृष्ठ 336
7. जैन जगत, नवम्बर 75 पृष्ठ 49
8. वही पृष्ठ 49-50
9. कल्याण कारक, सम्पादकीय पृष्ठ 38
10. वही सम्पादकीय पृष्ठ 39
11. आयुर्वेद का वृहद इतिहास पृष्ठ 337
12. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास भाग 2 पृष्ठ 186
13. कल्याणकारक, सम्पादकीय पृष्ठ 40-41
14. Mysore Archacological Report 1922 Page 23.
    कल्याणकारक सम्पादकीय पृष्ठ 43 से उद्घृत
15. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग 3 पृष्ठ 250-251.
16. वही, पृष्ठ 251
17. जैन जगत नवम्बर 1975 पृष्ठ 50
18. A History of Sanskrit Litrature, Page 173 Dr. A.B. Kaith.
19. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग-4 पृष्ठ 6 से 8
20. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 27 डॉ. गोकुलचंद जैन
21. पं. चैनसुखदास स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ 279 से 281
22. जैन जगत, नवम्बर 1975 पृष्ठ 52
23. आयुर्वेद का वृहद इतिहास पृष्ठ 52
24. योग चिंतामणि लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, प्रस्तावना
25. योग चिंता मणि पंचमविलास
26. The Jain Antiquary Val XIII No. 1 July 1947 Page 100 and 355
27. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ 299 आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा

(समाप्त)

पर्यावरण क्षेत्र में अहिंसा की अवधारणा

श्रीमती कल्पना मुकीम

पर्यावरण क्या है? प्राकृतिक पृथ्वी-जल-वायु-वनस्पति, अग्नि (सूर्य) ओजोन परत, प्राणी आदि। जिसकी उत्पत्ति में मानव का योगदान न हो पर्यावरण अंतर्गत समाविष्ट है। इसी पर्यावरण की छत्र छाया में मानव जीवन ही नहीं वरन् उसका अस्तित्व टिका हुआ है।

पर्यावरण के अंतर्गत निष्प्रयोजन स्थायी व स्वतंत्र कोई भी घटक नहीं। मानव जीवन पर्यावरण के प्रयोजन भूत, परिवर्तनशील, अनुग्रह इन तीन विशिष्टताओं के कारण ही उससे प्रभावित होता है जैसे पर्यावरण से संबंद्ध प्रत्येक घटक का जैसे भूमि, अग्नि का कुछ ना कुछ प्रयोजन मानव जीवन से अवश्य है, वह घटक परिवर्तनशील (सदा एक जैसे नहीं) होने से उपकारी है, उदा. सूर्य से एक जैसा ताप सदा प्राप्त होना वनस्पति द्वारा सतत प्राणवायु लेना आदि। ऐसा नहीं होता। तथापि अनुग्रह अर्थात सभी घटक एक दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं।

पर्यावरण रूप में उपलब्ध प्राकृतिक संपदा की मानव जीवन में उपयोगिता मानव को मिला प्राकृतिक उपहार है। 'गन्ना (ईख) कितना भी मीठा होने पर जड़ से खाया नहीं जा सकता।' इसकी सामान्य समझ रखने वाला मानव अपने अनंत उपकारी प्राकृतिक संशाधनों का अति दोहन करता हुआ थकता नहीं जिसके कारण आज हमारे समक्ष पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्या आ खड़ी हुई है। इस प्रदूषण के अन्तर्गत पृथ्वी-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, अग्नि-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, वनस्पति प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण आदि का समावेश है। इन सभी प्रदूषणों का मानव जीवन पर कुप्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है लेकिन अन्य कई जीव जन्तु प्रजातियाँ तो इन प्रदूषणों के प्रभाव से नष्ट होने के कगार पर जाती दिखाई दे रही है।

मानव द्वारा प्राकृतिक सम्पदाओं के साथ किया गया खिलवाड़ प्रकृति के प्रति हिंसात्मक प्रवृत्ति का द्योतक है। किसी भी प्रवृत्ति में

हिंसा का प्रवेश उनकी सात्विकता को नष्ट कर समस्याओं का निर्माण करता हैं जब तक मानव विश्वमैत्री का भाव अर्थात् अहिंसा को नहीं अपनाता वह दिन-ब-दिन समस्याओं से घिरता ही जाता है। मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन से उत्पन्न प्रदूषण जो पर्यावरण में हुए उनमें से कुछ पर एक दृष्टि क्षेप जो मानव के अहिंसक होने के पक्ष की अवधारणाओं को और भी पुष्ट करेगें।

(अ) **पृथ्वी प्रदूषण :-** धरती को सभी धर्मो में माता की संज्ञा दी गई हैं क्यों? क्योंकि पृथ्वी सर्व प्राकृतिक जैसे–जल, वनस्पति आदि तथा अप्राकृतिक जैसे–मकान, कारखाने, कृषि आदि सभी की शरण स्थली हैं। 'बहुरत्ना वसुन्धरा' के नाम से भी जानी जाती है। चिरकाल से इसी कारण इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। भू-गर्भ से प्राप्त होने वाले खनिज पदार्थों के लालच में इसका अतिदोहन किया जाता है।

खनिज पदार्थों में भी सबसे अधिक कोयले के लालच में पृथ्वी का खनन होता है। भौतिक जगत में कोयले के अत्यन्त उपयोगिता के कारण 'काला हीरा' की संज्ञा उसे प्राप्त है।

खनिज पदार्थों में विभिन्न प्रकार की धातु जैसे–कनक-सोना, रजत-चाँदी, ताँबा-ताम्र, लोहा आदि, विभिन्न पत्थर जैसे–संगमरमर, खार के पत्थर जैसे–सेंधा नमक, काला नमक, सज्जी, चूना आदि, रत्नमयी पत्थर जैसे–हीरा, माणक, पन्ना-मरकत आदि, तेल-केरोसिन, पेट्रोल डीजल आदि तथा इसके अतिरिक्त मिट्टी प्राप्त करने के लिए भी बेशुमार उत्खनन किया जाता हैं।

जैन-दर्शन में पन्द्रह प्रकार के कर्मादानों (वाणिज्यों) के करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है उसमें से एक 'फोड़ी कम्मे' अर्थात् भूमि का उत्खनन है। जैन-दर्शन के एक सूत्र का उल्लेख यहाँ संदर्भोचित है यथा–'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए' अर्थात् संसार के सभी तत्त्व अपनी-अपनी स्थिति में रहे। किसी का कोई नुकसान न करें। किसी को बाँधा ना पहुँचाऐं।

(ब) **जल प्रदूषण :-** षड् जीव निकाय के अन्तर्गत जल की गणना जीव में की जाती है अर्थात् जल सचेतन है। मनुष्य को जीवित

रहने में प्राण, वायु अत्यन्त आवश्यक हैं लेकिन उतना ही सच यह भी है कि इसके पश्चात् मनुष्य को जीवित रहने के लिए अन्न से भी ज्यादा आवश्यकता जल की है।

अति आवश्यक ऐसे जल तत्त्व का भारी मात्रा में उपयोग कारखानों, बहुमंजिला इमारतों, शापिंग मॉल, कृषि उद्योगों, विद्युत उत्पादन, कत्लखानों आदि स्थानों पर किया जाता है।

जल स्वयं एक स्थावर काय जीव होने के साथ-साथ उसकी प्रत्येक बूँद में 36,450 त्रस जीव होने की बात कैप्टन स्कोर्स बी ने साबित की है यह सर्वविदित है। अर्थात् एक बूँद का व्यय कितने जीवों की हिंसा में निमित्त है।

उपयोग से परे जाकर उसके उद्योग-धन्धे के रूप में काम आने के स्थानों पर रासायनिक पदार्थों के घुल जाने से प्रदूषित होना तथा उस प्रदूषित जल को अच्छे जल में मिलाकर उसे भी प्रदूषित करना ऐसी क्रियायें निरन्तर जारी रहती है। नदियों, तालाबों का पानी इस प्रकार अधिक दूषित होता है।

प्रदूषित जल के कारण प्राण वायु के उत्पादन का संतुलन बिगड़ने का कथन आचार्य महाप्रज्ञ ने[1] किया है। कहते है–'हमारी पृथ्वी पर 50 से 70 प्रतिशत प्राण वायु का उत्पादन पानी में पैदा होने वाली सूक्ष्म वनस्पति 'फायटोप्लैक्शन' से होता है। वह सूर्य से प्रकाश संश्लेषण कर पानी में हाइड्रोजन और आक्सीजन को विभक्त करती है।

प्रदूषित जल मनुष्यों के लिए उस पर आश्रित जल चर प्राणियों, मछली, मेढ़क, मच्छादि को भी प्रभावित करता है। उनके जीवन के लिए प्रदूषित जल खतरे का संकेत है। मछलियों के विनाश से पानी प्रदूषित होता है। हमने पूर्व में भी 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' अर्थात् अनुग्रह का पर्यावरण की तीसरी विशिष्टता के रूप में उल्लेख किया है।

(क) **अग्नि-प्रदूषण :-** सूर्य के ताप, सूर्य-चन्द्र तथा तारे से प्राप्त प्रकाश के अतिरिक्त ताप अथवा प्रकाश प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त

---

1. युवादृष्टि दिसम्बर 2008, पृष्ठ - 7, वर्ष 1936.

सभी प्रकार अग्नि प्रदूषण के अन्तर्गत आते है जैसे– पेट्रोलियम पदार्थो से चलने वाले इनवर्टर, जनरेटर, वाहन आदि, कोयला लकड़ी आदि के प्रयोग से जुड़ी औद्योगिक भट्टियाँ, लोह पथ गामिनी (रेल गाड़ी), रसोई घर के चूल्हे, होलिका दहन जैसे पर्व आदि, गैस से चलने वाले ऑटोरिक्शा, गैस के चूल्हे आदि, बिजली के घरेलू व औद्योगिक विभिन्न उपकरण, हुक्का, चिलम, बीड़ी, सिगरेट आदि के जलने से निकलने वाला धुँआ, कूड़े कचरे में आग लगाकर शीत ऋतु में आग तापना, विभिन्न अनुष्ठानों, पर्वों आदि में खुशी का इजहार करने हेतु पटाखे छोड़ना, जैसे क्रिकेट में भारतीय टीमके जीत के आने पर पूर्ण भारत वर्ष में पटाखे छोड़े जाते है, आतिशबाजी, रोशनाई करना, यज्ञ-हवन के निमित्त अग्नि का प्रयोग आदि। घरेलू आरंभ जहाँ पूर्व की भोर से पश्चात की सुबह तक एक समय मात्र ऐसा नहीं है जब अग्नि प्रदूषण का कार्य होता न हो जैसे-ऑल आउट, हीटर, गीजर, मोबाइल, लेपटॉप, सी. सी. टी.वी, कैमरे स्वचलित सीढ़ियाँ (Lift) आदि अनेकानेक उपकरण विभिन्न क्षेत्रों में, उद्योगों में प्रयुक्त होने वाले अनैसर्गिक साधन है जो सभी अग्नि प्रदूषण का कारण है।

अग्नि प्रदूषण का आज का बढ़ता फैशन प्रमाण है जैसे– योगाकेन्द्र, प्राकृतिक चिकित्सालय, फिजीयोथेरपी, लाफिंग क्लासेज, निदान केन्द्र आदि। भौतिक यान्त्रिकीकरण की आधुनिकता की स्पर्धा शरीर की हड्डियों की लवचिकता-चिकनाई को समाप्त कर स्वयं का आदि बनाकर प्रत्येक मानव के शरीर में स्थित 5 करोड़ 68 लाख 99 हजार 5 सौ 84 रोग, जिसमें 16 महारोग भी शामिल है, किसी न किसी का शिकार सतत कराती रहती है। दिन-ब-दिन नये-नये यन्त्र, दवाईयाँ, निदान के साधन निकलते रहते है उससे भी अधिक प्रमाण में नई बीमारियाँ उत्पन्न होती रहती है। यह सब क्या क्या है? प्रकृति के साथ खिलवाड़ अर्थात् हिंसा। शरीर को भी प्रकृति प्रदत्त सुरक्षा तथा सुविधाओं से वंचित कर अप्राकृतिक, विषम वातावरण, खान-पान, भोग-विलास, द्वारा शरीर पर अत्याचार, अर्थात् स्व शरीर से भी हिंसकता का व्यवहार। यानि कुल मिलाकर प्रदूषण की भरमार बराबर हिंसा का राज।

परोक्षतः अग्नि प्रदूषण मानव को सामाजिक प्राणी बनने नहीं

देता। आज प्रत्येक व्यक्ति विद्युत चलित यन्त्रों की दुनियां में डूब रहा है। संयुक्त परिवार से विभक्त परिवार और विभक्त परिवार भी जब विभक्त अर्थात् तलाक लेता है तब मानवता का गिरता स्तर आदि के लिए परोक्षतः भौतिक जगत के दूरदर्शन, मोबाइल, लेपटाप, टेबलेट, आदि के प्रति मानव की मूर्च्छा उत्तरदायी हैं। आरंभ में मनोरंजन पश्चात् और कुछ की चाहत में प्रायः अपने कक्ष में बंद रहते हैं। परिवार से सम्पर्क घटता जाता हैं। कोई भी प्रदूषण मानव के सहज गुणों पर हावी होकर उसे भी दूषित करता हैं।

आखिरकार भगवान महावीर की यह वाणी है– 'सर्व सर्वेण सम्बद्धम्' अर्थात् सब एक दूसरे के साथ अलग-अलग जुड़े हुए है। अग्नि, वायु, ध्वनि आदि सभी प्रदूषण परस्पर उत्तरदायी है। जैन दर्शन में अग्नि के अति अथवा अनावश्यक उपयोग को अंगार कर्म की संज्ञा दी गई है जो कि अनर्थ दण्ड का हेतू है। सीमित उपयोग की लक्ष्य प्राप्ति इससे सुरक्षा हैं। हम वाहनों के पीछे लिखा सदा से पढ़ते आ रहे है। 'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।'

(5) **वायु-प्रदूषण :-** पृथ्वी ग्रह पर मानव जीवन के होने का कारण ही वायु मण्डल है। वायुमण्डल में प्राण वायु का होना तथा उत्पन्न कार्बनडाइ-आक्साइड का वनस्पति, समन्दर आदि में पुनः सोखना जिसमें कार्बन की मात्रा का न बढ़ना यह प्रक्रिया चलती रहती है अर्थात् वायु से प्राप्त प्राण वायु रक्त को शुद्धकर उसे मानव के अतिरिक्त अन्य अनेक प्राणियों के जीवन को भी टिकाये रखती है।

सूर्य और पृथ्वी के मध्य में ओजोन परत हैं। ओजोन परत की उपयोगिता क्या है? ओजोन परत सूर्य से आने वाली घातक परा बैंगनी, गामाएक्स तथा ब्रह्माण्डीय किरणों को जो किसी चेतन को हानि पहुँचाने में सक्षम है, पृथ्वी पर आने से रोकती है। अर्थात् पृथ्वी पर ओजोन के कारण ही आक्सीजन का स्रोत है। प्रकृति प्रदत्त सुविधाएँ जिसका उपयोग अधिकतम मानव ही करता है वही भौतिक सुखों की उद्याम लालसाओं के कारण उसका भक्षक बन समस्याओं को बढ़ाने में योगदान दे रहा है। जीवन रक्षक ओजोन परत के लिए नाइट्रिक-ऑक्साइड व क्लोरीन-आक्साइड मुख्यतया घातक होता है।

अधिक ऊँचे उड़ने वाले जेट विमानों से नाइट्रिक ऑक्साइड उत्पन्न होता है जो ओजोन परत के लिए हानिकारक हैं।

ठोस प्लास्टिक, रेफ्रीजरेटरों, वातानुकूलक (A.C.) आदि से निकलने वाले क्लोरीन अन्य अणुओं के साथ मिलकर वायु में फैल जाते हैं। ये परमाणु टिकाऊ होने से धीरे-धीरे ओजोन तक उसके अणुओं को निरन्तर तोड़ते हुए क्षतिग्रस्त करते है। वैज्ञानिक गणनाओं[1] के अनुसार क्लोरीन का प्रत्येक परमाणु ओजोन के 1,00,000 अणुओं को नष्ट करता है।

औद्योगीकरण के पीछे छिपी मानव की अन्तहीन लाभ की अदम्य लालसा प्रदूषण जैसी समस्या का प्रधान कारण है। कारखानों से निकलने वाले विभिन्न रसायन युक्त धुएँ, वाहनों से निकलने वाले दूषित रसायन, ईंधन रूप में विभिन्न उद्योगों में काम में आने वाले खनिज तेल, कोयला आदि से निकलने वाला धुँआ, वाहनों के धुओं में जहरीली गैसों के अतिरिक्त निकेल, सीसा, पारा, क्रोमियम आदि धातुओं के कण, कार्बन मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, धूल जैसे हानिकारक पदार्थ वायु मण्डल में प्रदूषण फैलाते हैं।

अणुयुद्ध, कितने ही शस्त्रास्त्रों का परीक्षण आदि से भयंकर गर्मी, विकिरण, विस्फोट आदि खतरनाक स्थितियाँ पैदा होती है, जो पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करती है। हिम खण्डों को भी पिघलाकर सागर के जल की सतह को बढ़ाती है। जिससे आस-पास की भूमि जलमय होकर धरती का प्रमाण कम हो रहा है। वायु प्रदूषण से धरती और सागर भी प्रभावित होते हैं।

जैन-दर्शन में चार महाविगई (महाविकृति) का उल्लेख आता है जो 22 अभक्ष्य में भी गिना जाता है, यथा–मधु, माँस, मदिरा, मक्खन इन चारों के निर्माण में अथवा निर्माण पश्चात् वायु दूषित होती है। जैसे–मधु प्राप्त करने में छत्ते के नीचे धुँआ पैदा करने से वायु व अग्नि प्रदूषण।

माँस प्राप्ति हेतु मारे जाने वाले पशु भय को प्राप्त होने के कारण जैसे यूरोप के बेल्जियम में घेण्ट शहर में मिथेन गैस (Methan Gas) गायों

1. युवादृष्टि दिसम्बर 2008, पृष्ठ - 10, वर्ष 1936.

द्वारा कत्लखानों से इतने प्रमाण में निकलती है कि वहाँ प्रदूषणों से त्रस्त होकर प्रति वृहस्पतिवार शाकाहार का नियम बना दिया गया। कत्लखानों में खच-खच (गर्दन करने पर) ध्वनि-प्रदूषण, मारने के पश्चात् माँस-रक्त आदि के प्रक्षालन से जल-प्रदूषण, पशु हिंसा में प्रयुक्त यन्त्रों से अग्नि तथा वायु प्रदूषण आदि हिंसा और हिंसा का ही बोल बाला हैं।

मदिरा फलों के विकृत अर्थात् द्राक्ष, महुआ, खजूर जैसे फलों को सड़ाकर प्राप्त किया रस है जो वातावरण में अपनी दुर्गंध छोड़ वायु प्रदूषण फैलाता है। सड़ने की प्रक्रिया में बेशुमार जीवों की उत्पत्ति होती है तथा मदिरा बनाने की प्रक्रिया में उन जीवों का अर्क भी संघटित निकलता हैं। मानव को प्रदूषित करने वाली, मदोन्मत करने वाली महा भयंकर इतना ही नहीं वरन् मानव को प्रदूषित तो क्या बल्कि मानव के मानवता की मानसिकता को नष्ट करने की कुव्वत मदिरा पान में हैं। आत्म घात ही नहीं यह इह गति–परगति की भी दुर्गति के लिए उत्तरदायी है। पन्द्रह कर्मादानों में रस वाणिज्य के अन्तर्गत गृहस्थ को इसके व्यापार करने का निषेध किया है।

मक्खन दही का सार भाग है जिसे नवनीत भी कहते हैं। दही से अलग निकालकर अन्तर्मुहूर्त में ही उसमें जीवों का उत्पन्न होना आरम्भ हो जाता है। उसमें लीलन-फूलन भी होने लग जाती है। यह काम-विकारों को उत्पन्न करता है। महाविकृत्तियाँ 'यथा नाम तथा काम' को सार्थक करती है। नाम में ही हिंसा की व्यापकता व प्रदूषण की व्याप्तता समाहित है। आखिरकार सभी चराचर सम्बन्धित होते है। 'सर्व सर्वेण सम्बद्धम्।'

(5) **वनस्पति प्रदूषण :-** 2540 वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने केवलज्ञान द्वारा वनस्पति को सजीव बताते हुए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का कथन किया था। वनस्पति के चेतनता को स्वीकार किया गया सन् 1920 में सर जगदीश चन्द्र बसु द्वारा सिद्ध करने के पश्चात्। फिर भी 'आत्मवत, सर्वभूतेषु' की संवेदना से रहित। 'फोटोसिंथेसिस' (आहार तैयार करना) कक्षा छः में पढ़ने वाले बच्चे भी जानते है कि इस क्रिया के दौरान वनस्पति कार्बन को ग्रहण कर हमें प्राण वायु प्रदान करती है। वर्षा के होने में भी वनस्पति का सहयोग है।

वनस्पति से हमें ईंधन, आहार, औषधि, वस्त्र की बुनियाद, कपास (रुई), वन्य पशु को सुरक्षा, पशु-पक्षियों को आवास प्राप्त होता है। संक्षेप में जन्म से मृत्यु तक अनिवार्य प्रत्येक आवश्यकता को वनस्पति पूर्ण करती है इसीलिए यह धरती की बहुमूल्य सम्पत्ति है।

हमने पूर्व में भी बताया है कि प्राचीन काल में कल्पवृक्षों से ही पूर्ण जीवन यापन होता था जब लोग असि-मसि-कृषि से अनभिज्ञ थे। तात्पर्य यह है कि मानव जीवन वनस्पति बिना आदि से आधुनिक काल तक पंगु था भी और है भी। उसकी विशेषता अनागत में भी इसके महत्व को साबित करती है। तथापि उसके प्रति मानव का व्यवहार क्या है?

अंधाधुंध प्रयोगकर प्रदूषण की समस्या को उत्पन्न तो कब का कर ही चुका है बल्कि निरन्तर वृद्धि में गतिशील भी है। कैसे?

वनों के अंधाधुंध कटने से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है। वनों की कटाई से कार्बन गैस का अवशोषण दिन-ब-दिन कम होकर वायु प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। मनुष्य प्राण वायु के अतिरिक्त अन्य दूषित गैसों को भी ग्रहण कर नित्य नई बीमारियों का शिकार तथा बीमारी के प्रतिशत में वृद्धि भी कर रहा हैं।

वनों के विनाश से भूमि प्राप्त होने के बजाय विनष्ट हो रही हैं। रेगिस्तान में तब्दील हो रही है। वनस्पति वर्षा होने का एक कारण है तथा वह वर्षा के तेज मार को स्वयं सहनकर भूमि पर आने तक वर्षा की गति को कम करती है जिससे मिट्टी की परत-दर-परत बनने लगती है जो उपजाऊ यानि कृषि योग्य होती है। इसके बनने में दीर्घकाल व्यतीत होता है। इसका बनना तो दूर, जो है उस भूमि का भी स्खलन होकर वह मरुस्थल में परिवर्तित होती है। यानि बंजर हो जाती हैं।

दुर्लभ वन-प्रजातियाँ कुछ नष्ट हो चुकी है तथा कुछ नष्ट होने की कगार पर हैं। खाद्य उत्पादन में कमी आकर मंहगाई बढ़ने से दो तरफ मार झेलनी पड़ रही हैं।

वर्षा प्रभावित होने से अनावृष्टि व सूखे का संकट बढ़ता है। वनों से प्राप्त जड़ी बूटियाँ, लकड़ियाँ, कागज, रबर यहाँ तक की जो देश विकसित नहीं बल्कि विकासशील है जैसे भारत वहाँ पर ग्राम

अधिक हैं जहाँ ईंधन रूप में लकड़ियों का प्रयोग ही अधिक होता है। उनकी माँग अधिक है पूर्ति कम।

भोग प्रधान संस्कृति की दौड़ में रास्ते, भवन, बाँध, नहर, यातायात के मार्ग बनाने के लिए वनस्पति के अतिदोहन से कोई परहेज रखने की इच्छा नहीं करता।

वनस्पति का अति उपयोग वायु, जल, भूमि, मानव-स्वास्थ्य आदि को किस प्रकार प्रभावित करता है? भगवान महावीर ने कहा[1] 'सर्व सर्वेण सम्बद्धम्' अर्थात् सब एक दूसरे के साथ अलग-अलग जुड़े हुए है। 'वन कम्मे' वाणिज्य का निषेध इसी के तहत भगवान ने किया है।

(इ) **ध्वनि-प्रदूषण :-** 'डेसीबल' ध्वनि मापक ईकाई है। डेसी अर्थात् दस एवम् बेल ('ए. जी. ग्राहम बेल)' नामक वैज्ञानिक के नाम पर से लिया गया है।[2] बीस डेसीबल से न्यून ध्वनि को मनुष्य सुन नहीं सकता।

अत्याधिक शोरगुल जो सहज सहन करने से परे हो, जो जन-जीवन को प्रभावित करता है। वह ध्वनि-प्रदूषण कहलाता हैं। ध्वनि, वायुमण्डल में ही विस्तरित होती है अतएव वह वायु प्रदूषण का ही हिस्सा है।

ध्वनि जो प्रदूषण का कारण है उसके उत्पत्ति स्थान अथवा उत्पत्ति के माध्यम विभिन्न है जैसे–एक व्यक्ति का गुस्से में चिल्लाना दो से अधिक व्यक्ति में होने वाला वार्तालाप घरेलू यान्त्रिक व्यवस्था जैसे– तरह-तरह की मशीने- सिलाई मशीन, मिक्सर, टुल्लू पम्प, पंखे, कूलर, वातानुकूलक, दूरभाष यन्त्र, दूरदर्शन, मोबाइल, टेप, रेडियों आदि। घरेलू त्यौहार या अनुष्ठान जैसे– दुर्गापूजा दीपावली या घरेलू पार्टियां जैसे कीटी, जन्मदिन आदि। रास्ते पर चलने वाले वाहन, हॉर्न, भाषण नारेबाजी जुलूस आदि।

ध्वनि की अधिकता श्रवण की क्षमता में कमी लाती है अर्थात् बहरापन बढ़ता है, मानसिक रोगों में जैसे-क्रोध, चिड़चिड़ाहट, निराशा, तनाव, अशान्ति आदि व शारीरिक रोगों में उच्च रक्तचाप, कान के पर्दे को नुकसान पहुँचाना, कान में आवाजें गूँजना, हार्ट-फेल होना आदि।

---

1. युवादृष्टि दिसम्बर 2008, पृष्ठ - 7,
2. वही, पृष्ठ - 29,

पंक्षी बनु उड़ती फिरूँ, मस्त गगन में।
आज मैं आजाद हूँ दुनियाँ के चमन में।।

अन्तर्मन को प्रशान्त करने वाली इन पंक्तियों में पंछियों का सा जीवन जीने को लालायित अशान्त मानव की पुकार छिपी हुई है। लेकिन अफसोस। स्वयं मानव ने अत्याधिक शोर गुलों से उनके जीवन को भी दुभर बना दिया है। पशु-पक्षियों की आवाजें जो विभिन्न संदेश आपस में फैलाती है उनको बाधा पहुँचाने का काम भी मानव द्वारा फैलाया गया ध्वनि प्रदूषण है।

पुनःश्च वही भोग प्रधान संस्कृति की देन। कब तक मानव अपनी भोग-विलासिता के कारण प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन के द्वारा प्रदूषण फैलाता जायेगा?

उपरोक्त प्रदूषणों के अतिरिक्त भी प्रदूषण है। उन पर एक सरसरी निगाह–

अस्त्रों की स्पर्धा, वातावरण में उत्पन्न होने वाला कोहरा, सौर मण्डल से प्राप्त ताप व प्रकाश के अतिरिक्त अन्य सर्वताप व प्रकाश के साधन, कीटनाशकों का प्रयोग, अवशेष (बचे-खुचे) पदार्थों को विनिष्ट करते हुए अच्छे शुद्ध संशाधनों को प्रदुषित करना जैसे– कारखानों से निकले गंदे ठोस तरल पदार्थों का निकासी (नाले) द्वारा नदी से जाकर मिलना रोग-निदान करने में प्रयुक्त विकिरणें, नाभिकीय विस्फोट, नाना उद्योगों व बिजली के उपकरण जैसे– वातानुकूलक, हीटर, फ्रीज, कूलर आदि से वातावरण में फैलती विषैली गैसे जो एसिड़ वर्षा के रूप में बरसती है, इन सबसे अधिक घातक मांसाहार जो शिकार के लिए प्रेरित करता है, विदेशी मुद्रा हेतु मांस निर्यात के लालच में गहरे फंसकर, पर्यावरण के प्राकृतिक संरक्षण का ही भक्षक बन बैठा है आदि अनेकानेक प्रदूषण के ठोस प्रकार है।

मोटे तौर पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषण उनसे उत्पन्न समस्याओं की जड़ में दूषित मानसिकता व भोग-प्रधानता अर्थात् हिंसा और हिंसा की ही भरमार है। समाधान है केवल 'पुढ़ो सत्ता' अर्थात् प्रत्येक प्राणी की स्वतन्त्र सत्ता है, यानि तीन अक्षर के समुच्चय का छोटा सा शब्द 'अहिंसा' जिसका प्रतिपादन हमारे वर्तमान शासनपति भगवान महावीर ने किया हैं। उनके प्रवचन (प्रशस्त वचन) का सार है–

त्रिलोक से त्रिकाल तक, आगत से अनागत तक कारण है,
हिंसा-हिंसा और हिंसा।
कल्पना से यथार्थ तक, ऋषभ से महावीर तक निदान है,
अहिंसा-अहिंसा और अहिंसा।।

समस्याएँ चाहे जितनी ही विविध प्रकार की है उनका निराकरण वक्ती तौर पर, सरसरी निगाह में कुछ प्रतिबन्ध या कुछ कानून बनाकर अत्यन्त अल्प प्रमाण में शायद किया जा सकता है लेकिन जड़ से निराकरण हेतु अहिंसात्मक मार्ग से ही केवल किया जा सकता हैं। प्रत्येक समस्या को द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा से गौरकर समाधान जो पुख्ता और सार्वभौमिक हो क्रियान्वित करने पर ही झटके से ना सही शनैः शनैः ही होता हो लेकिन ठोस निराकरण स्वरूप होता है इसमें कोई दो राय नहीं। कैसे?

पर्यावरण सम्बन्धी समस्या के निराकरण हेतु द्रव्य की अपेक्षा प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन, अतिव्यय, आवश्यकता से परे उपभोग अनावश्यक द्रव्यों का विसर्जन आदि मुद्दों का ख्याल करना होगा।

क्षेत्र की अपेक्षा समाधान करते हुए स्थानीय या प्रान्तीय, देशव्यापी या विश्वव्यापी है इसे स्पष्ट कर तदनुसार कौन से कदम उठाने चाहिए इसका निर्णय कर आगे बढ़ना चाहिए।

काल से वर्तमान से जुड़ी है या सदा से चली आ रही है, यदि प्राचीन है तो प्रमाण आज घटता हुआ है या बढ़ा हुआ, अनागत को प्रभावित करने वाली है या वक्ती तौर पर परेशान करने वाली है आदि पर सूक्ष्मतः गौरकर समाधान निकाला जाना चाहिए।

भाव से व्यक्ति के विभिन्न जैसे–नैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक, पारिवारिक, सामाजिक आदि मूल्यों से उसे च्यूत करने वाली हैं, अन्य के लिए अन्याय पूर्ण है, विश्व-मैत्री भाव से नीचे गिराने वाली है, कषाय आदि हिंसक भावों की उत्प्रेरक है आदि को नजर अन्दाज न करते हुए उच्च आदर्श, उदात्त, चरित्र का गठन करने वाली हो, इस प्रकार समाधान पर जोर देना चाहिए।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से समस्या का समाधान तो होना चाहिए लेकिन फिर भी इसका प्रारम्भ कहाँ से हो?

विभिन्न संस्थाएँ, कानून की धाराएँ, संगठन, क्लब, समितियाँ, फोरम चाहे जितनी भी अलग-अलग व्यवस्थाओं द्वारा समाधान करने की चेष्टा की जाए फिर भी व्यक्तिगत तौर पर प्रारम्भ करने से वह विभिन्न कोनों से व स्थानों से एक साथ किये जाने के कारण ज्यादा असर कारक साबित होता है। सबसे बड़ा तथ्य इसके पार्श्व में यह है कि व्यक्ति अपने दायित्व के प्रति जागरुक होता है। पश्चात् संगठित रूप से भी होता है। परिणाम सुखद व सर्वव्यापी होता है। जैसे भगवान महावीर ने व्यक्तिगत रूप से अहिंसा के विभिन्न मार्ग अपनाएँ। महात्मा गाँधी ने व्यक्तिगत तौर पर प्रारम्भ कर धीरे-धीरे जनता को भी अपने साथ कर लिया संक्षेप में 'कल्पना में विश्व-व्यापकता, कृति में वैयक्तिक्ता' ही समस्याओं का समाधान है।

पर्यावरण प्रदूषण के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, ध्वनि आदि विभिन्न प्रदूषण के समाधानार्थ कुछ बिन्दु जो जैन-दर्शन में षड् जीव निकाय व चौदह नियमों के अन्तर्गत आते है। 'अन्तसमे मन्निज्ज छप्पिकाये'[1]– दशवैकालिक। अर्थात् छः जीव निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो। ऐसा भगवान महावीर ने बताया है। छः जीव निकाय है कौन? यथा– पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस। जैन-दर्शन में इन छः हो को जीव-सचेतन माना गया है जबकि विज्ञान, त्रस जीव के अन्तर्गत आने वाले मानव काया को अन्य पाँच तत्त्वों (प्रारम्भ के पाँचों जीवों) से निर्मित मानता है।

(क्रमशः)

1. अणुव्रत 1-15 अक्टूबर 2011 पृष्ठ - 17

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी

दक्षिण भारतीय परम्परा :- दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसकी ऊपरी भुजाओं में सर्प एवं निचली में अभयमुद्रा एवं शक्ति का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में वृषभवाहना यक्षी (विजया) षण्मुखा एवं द्वादशभुजा है जिसके करों में खड्ग, खेटक, शर, चाप, चक्र, अंकुश, दण्ड, अक्षमाला, वरदमुद्रा, नीलोत्पल, अभयमुद्रा और फल का वर्णन है। यक्षी का स्वरूप यक्षेन्द्र से प्रभावित है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में हंसवाहना विजया चतुर्भुजा है और उसके हाथों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[1]

मूर्ति परम्परा :

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियाँ मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ एवं बारभुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में अरनाथ के साथ **तारादेवी** नाम की द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायी में पद्म है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में भी यक्षी द्विभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः गज है। यक्षी के करों में वरदमुद्रा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त दोनों मूर्तियों में यक्षी की एक भुजा में पद्म का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा से निर्देशित हो सकता है।[4] स्मरणीय है कि दोनों मूर्तियां दिगंबर स्थलों से मिली हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति में द्विभुज यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है।

---

1. रामचन्द्रन, टी. एन., पू. नि., पृ. 207
2. जि. इ. दे., पृ. 103, 106
3. मित्रा, देबला, पू. नि., पृ. 132
4. पद्म का प्रदर्शन बौद्ध तारा का प्रभाव भी हो सकता है।

(19) कुबेर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा :

कुबेर जिन मल्लिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में गजारूढ़ यक्ष को चतुर्भुज एवं अष्टभुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका में गरुडवदन[1] कुबेर का वाहन गज है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, परशु, शूल एवं अभयमुद्रा तथा बायें में बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[2] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का वर्णन है।[3] मन्त्राधिराजकल्प में कुबेर को चतुर्मुख नहीं कहा गया है। देवतामूर्तिप्रकरण में रथारूढ़ कुबेर के केवल छह ही हाथों के आयुधों का उल्लेख है, फलस्वरूप शूल एवं अक्षसूत्र का अनुल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा-प्रतिष्ठासारसंग्रह में गजारूढ़ यक्षेश के आयुधों का अनुल्लेख है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार में कुबेर के हाथों में फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] अपराजितपृच्छा में यक्ष को चतुर्भुज और सिंह पर आरूढ़ बताया गया है और उसके करों में पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख हैं।[7]

कुबेर के निरूपण में नाम, गजवाहन एवं मुद्गर के सन्दर्भ में

---

1. केवल निर्वाणकलिका में ही यक्ष को गरुड़वदन कहा गया है।
2. कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्ण गरुडवदनं गजावाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपार्णि बीजपूरकशक्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्त-वामपाणि चेति। निर्वाणकलिका 18.19
3. त्रि. श. पु. च. 6.6.251-52, पद्मानन्दमहाकाव्य-परिशिष्ट-मल्लिनाथ 58-59, मन्त्राधिराजकल्प 3.43, आचारदिनकर 34, पृ. 175, मल्लिनाथचरित्रम् (विनयचन्द्रसूरिकृत) 7.1154-1156
4. देवतामूर्तिप्करण 7.53
5. मल्लिनाथस्य यक्षेशः कुबेरो हस्तिवाहनः।
   सुरेन्द्रचापवर्णोसावष्टहस्तश्चतुर्मुखः।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.58
6. सफलकधनुर्दण्डपद्म खड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम्।
   गजगमनचतुर्मुखेन्द्र चापद्युतिकलशांकनतं यजेकुबेरम्।। प्रतिष्ठासारोद्धार 3.147
   द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् 7.19, पृ. 337
7. पाशांकुशफलवरा धनेट् सिंहे चतुर्मुखः। अपराजितपृच्छा 221.53

हिन्दू कुबेर का प्रभाव देखा जा सकता है[1] पर जैन कुबेर की मूर्ति विज्ञानपरक दूसरी विशेषताएं स्वतन्त्र एवं मौलिक हैं।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा– दोनों परम्परा के ग्रन्थों में अष्टभुज कुबेर का वाहन गज है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्मुख यक्ष के दक्षिण करों में खड्ग, शूल, कटार और अभयमुद्रा तथा वाम में शर, चाप, बर्झी और कटक मुद्रा के प्रदर्शन का विधान है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार चतुर्मुख कुबेर खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, मातुलिंग, परशु, वरदमुद्रा और शण्डमुद्रा से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्ष के करों में खड्ग, खेटक, शर, चाप, पद्म, दण्ड, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[3] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्पराएं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुबेर यक्ष की कोई स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

(19) वैरोट्या (या अपराजिता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा :

वैरोट्या (या अपराजिता) जिन मल्लिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा वैरोट्या[4] का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन शरभ है।

श्वेतांबर परम्परा-निर्वाणकलिका में पद्मवाहना वैरोट्या के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें में मातुलिंग एवं शक्ता का वर्णन है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[6]

(क्रमशः)

1. भट्टाचार्य, बी. सी. पू. नि., पृ. 113
2. जैन कुबेर के हाथ में धन के थैले (नकुल के चर्म से निर्मित) का न प्रदर्शित किया जाना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ज्ञातव्य है कि धन के थैले एवं अंकुश और पाश से युक्त गजारूढ़ यक्ष का उल्लेख नेमिनाथ के सर्वानुभूति यक्ष के रूप में किया गया है क्योंकि नेमिनाथ की मूर्तियों में अम्बिका के साथ यही यक्ष निरूपित है।
3. रामचन्द्रन, टी. एन., पू.नि., पृ. 207
4. मन्त्राधिराजकल्प एवं देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षी को क्रमशः वनजात देवी और धरणप्रिया नामों से सम्बोधित किया गया है।
5. वैरोट्यां देवी कृष्णवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां मातुरिंगशक्तियुक्तवामहस्तां चेति। निर्वाणकलिका 18.19
6. त्रि.श.पु.च. 6.6.253-54; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट-मल्लिनाथ 60-61; मन्त्राधिराजकल्प 3.62; देवतामूर्तिप्रकरण 7.54; आचारदिनकर 34, पृ. 177

सोने के कंगन

श्री केवल मुनि

अनेक नगरों और ग्रामों में घूमता-फिरता वह एक भयानक वन में आया। वहाँ उसे एक मदोन्मत्त हाथी दिखाई दिया–विशाल पर्वताकार! उसके गले में शंख और घण्टियों की माला पड़ी हुई थी। रत्नशिख को देखते ही उसने कुपित होकर चिंघाड़ मारी और दौड़ पड़ा। रत्नशिख कुछ समय तक तो उसे छकाता रहा और फिर उछलकर उसके गले पर सवार हो गया। गण्डस्थल पर एक ही मुष्टिका प्रहार ने मदोन्मत्त हाथी का मद उतार दिया। हाथी वश में हो गया।

उसी समय आकाश से एक माला गिरी और रत्नशिख के गले में आ पड़ी। साथ ही एक आवाज–बहुत अच्छा किया। रत्नशिख ने ऊपर देखा तो आकाश में चलती हुई एक सुन्दरी दिखाई पड़ी। रत्नशिख के होठों पर मुस्कान तैर गई।

कुछ समय उपरान्त रत्नशिख का कंठ सूखने लगा। उसने मन में सोचा–कहीं पानी मिल गया तो कितना अच्छा हो?

हाथी मानो उसके मनोभावों को समझ गया और एक निर्मल जल से भरे सरोवर के निकट ले पहुँचा। रत्नशिख उतरा और श्रम मिटाने के लिए मछली के समान जल में तैरने लगा। हाथी तो उसी किनारे पर जल क्रीड़ा करता रहा और रत्नशिख तैर कर किनारे के दूसरे स्थान पर पहुँच गया। वहाँ एक स्त्री बैठी थी। उसने रत्नशिख को वस्त्र अलंकारों से विभूषित किया और पुरुष ने सुगन्धित तांबूल से उसका स्वागत। मधुर स्वर में कहने लगी–अपूर्वदेव! आपके आगमन से बहुत प्रसन्नता हुई।

रत्नशिख से विस्मयपूर्वक उत्तर दिया–सुन्दरी! मुझमें क्या अपूर्वपना है?

–है क्यों नहीं! मेरी सखी ने जिसको वरण किया है, वह अपूर्व नहीं तो और क्या है?

–तुम्हारी सखी कौन है? और वह कहाँ रहती है?

सुन्दरी कहने लगी–हे भद्र! मेरी पूरी बात सुन लो। इसके

उपरान्त तुम्हें मेरी सखी और अपनी अपूर्वता का स्पष्ट आभास हो जायेगा।

वह कहने लगी–

यहाँ से उत्तर में रजताढ्य नाम का एक श्रेष्ठ पर्वत है। उस पर बसे सुरसंगीत नगर का राजा विद्याधर सुरण था। उसकी स्वयंप्रभ और महाप्रभ नामक दो स्त्रियों से शशिवेग और सुरवेग दो पुत्र हुए। राजा सुरण ने बड़े पुत्र शशिवेग को राज्य देकर रवितेज चारण ऋषि के पास जिनदीक्षा ले ली। छोटा सुरवेग भी राज्य न मिलने से नाराज हो गया और अपने मामा सुवेग की सहायता लेकर सुरसंगीत नगर पर चढ़ आया। मंत्रियों ने शशिवेग को सलाह दी कि छोटे भाई से युद्ध करना उचित नहीं है और सुवेग की सहायता के कारण उसकी शक्ति भी अधिक है। इसलिए इस नगर को छोड़ देना ही उचित हैं।

मंत्रियों की राय को मानकर शशिवेग अपने समस्त परिवार सहित नगर को छोड़कर यहाँ चला आया और समीप ही सुगिरि पर्वत पर नवीन नगर बसाकर रह रहा है। उसकी एक पुत्री चन्द्राभा है। किसी नैमित्तिक ने बताया–राजन्! इस कन्या के पति के सहयोग से तुम्हारा छिना हुआ राज्य वापिस मिल जायेगा।

विद्याधर ने पूछा–नैमित्तिक! बताओ इसका पति कौन होगा?

–सुग्रीवपुर के राजा का मदोन्मत्त हाथी जंजीर तुड़ा कर इस वन में आयेगा। जो उसे वश में करले वहीं इस कन्या का पति होगा।– नैमित्तिक ने बताया।

तब से हम इस जंगल में इस हाथी की गतिविधियाँ देखती हुई घूमती हैं। हाथी को वश में करते ही उसी विद्याधरकुमारी ने आकाश से आपके गले में वरमाला डाली थी और मुझे आज्ञा दी कि इस पुरुष को वस्त्रालंकारों से सुसज्जित करो।

हे भद्र! इसलिए मैं आपके स्वागत-सत्कार हेतु यहाँ बैठी थी।

सुन्दरी यह कह ही रही थी कि सुग्रीवपुर से एक अश्वारोही सवार आया। इधर-उधर देखकर उस अश्वारोही ने पूछा–

–भद्रे! सुग्रीवपुर के मत्त हाथी पर बैठकर जो पुरुष यहाँ आया था, वह कहाँ गया?

हँसकर सुन्दरी ने उत्तर दिया–हाथी को चुराकर यहाँ तो वह लाया नहीं।

अश्वारोही गंभीरतापूर्वक कहने लगा–

–ऐसा मत कहो, सुन्दरी! अद्‌भुत पराक्रमी वह पुरुष हमारा स्वामी ही समझो! हमारे राजा वसुतेज बहुत दिनों से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह कहाँ गया? बता दो, बड़ी कृपा होगी।

सुन्दरी ने संकेत करके कहा–यह बैठा है तुम्हारे सामने! अच्छी तरह नजर भर कर देख लो।

अश्वारोही ने रत्नशिख को नमन किया, कुछ अश्वारोहियों को वहीं छोड़ा और नगर में आकर राजा को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया।

राजा वसुतेज तालाब के पास आया और रत्नशिख को उसी हाथी पर बैठाकर अपने नगर ले गया। राजसभा में ले जाकर उचित आसन पर बैठाकर और कहने लगा–

–भद्र! एक दिन मैं सुमंगल केवली की देशना सुनने गया और संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राज्य और आठ कन्याओं का भार सिर पर था इसलिए मैंने उनसे पूछा– भगवन्! मैं अपनी कन्याएं और राज्य किसको दूँ? तब उन्होंने बताया- -राजन! कुछ समय पश्चात् तुम्हारा हाथी मदोन्मत्त होकर भयंकर जंगल में चला जायगा। जो भी उसे वश में कले वहीं तुम्हारे राज्य और कन्याओं का स्वामी होगा।

भद्र! जिस दिन से मेरा हाथी मदोन्मत्त होकर जंगल में भागा, मैंने अपने अनुचर उसके पीछे लगा दिये और तुम्हारी प्रतीक्षा चातक की तरह करता रहा। आज मेरे भाग्य से तुम मिल गये हो। यह राज्य और कन्याओं को ग्रहण करो जिससे मेरी चिर प्रतिक्षीत अभिलाषा पूरी हो जाए।

रत्नशिख ने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी। कन्याएं और राज्य का भार देकर राजा ने दीक्षा ग्रहण कर ली। रत्नशिख ने धूमधाम से दीक्षा महोत्सव किया और न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा।

यह सब वृत्तान्त सुरवेग के मामा सुवेग विद्याधर ने सुना तो बहुत क्रोधित हुआ और हाथी का रूप बनाकर रत्नशिख राजा के उपवन में आकर उपद्रव करने लगा।

(क्रमशः)

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	50.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of **SATYA SADHNA**

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in